रामलीला

प्रेमचन्द

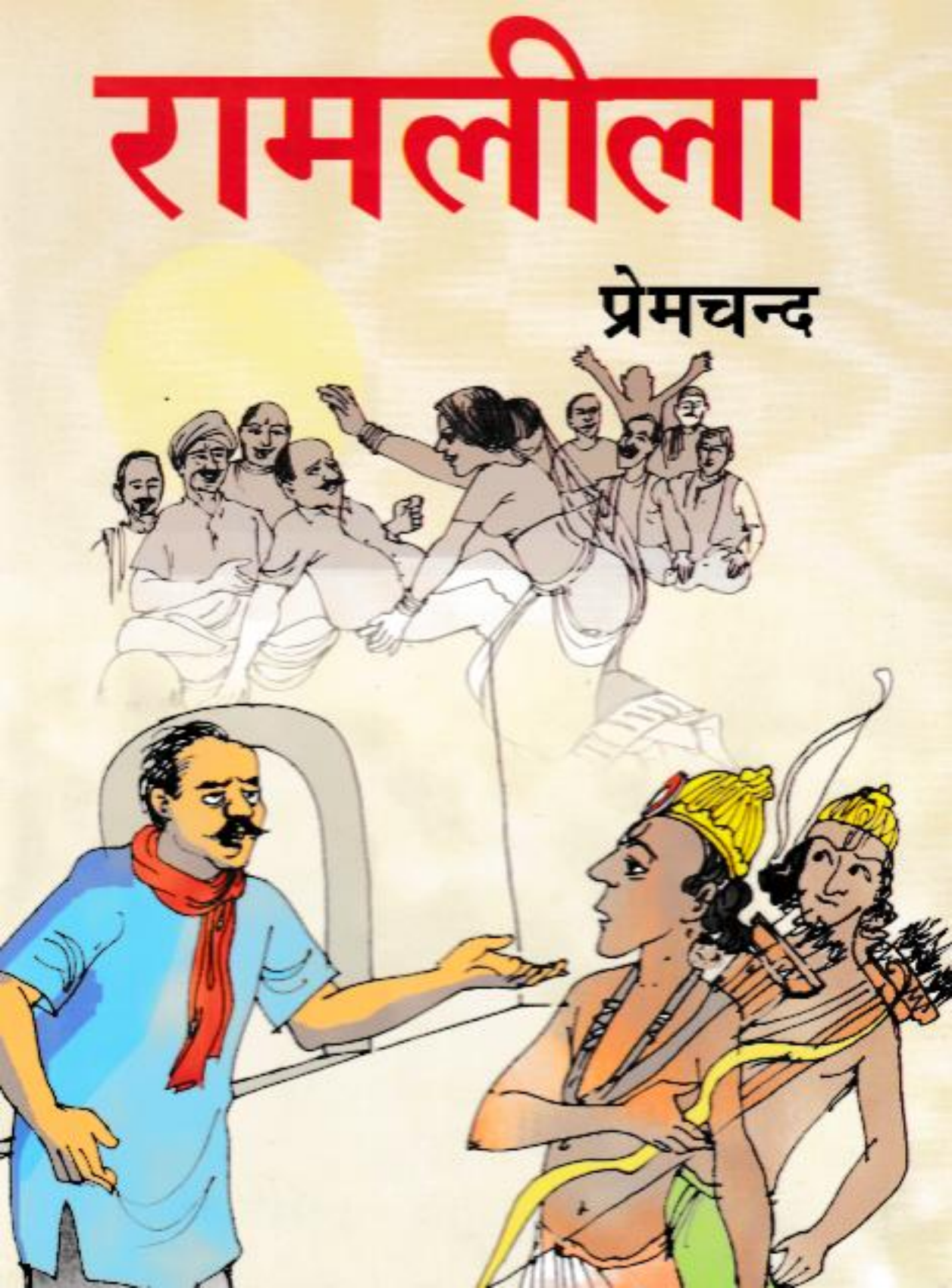

Telegram Group

www.OnlineStudyPoints.com

OnlineStudyPoints_2 - Join Now

OnlineStudyPoint_2 - Join Now

(24 x 7) Students Online Chat - All india

अगर आप किसी भी एग्जाम की तैयारी कर रहे हैं तो इस ग्रुप को ज्वाइन कर लीजिए |

* Free e books (Important)

* Free Study Material (pdf)

* Free Jobs Alert (Daily Update)

* Speed - Quiz Test (Daily Updates)

रामलीला

प्रेमचन्द

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू

अनुराग ट्रस्ट

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 15 रुपये
पहला संस्करण 2005
पुनर्मुद्रण : अगस्त 2012

प्रकाशक
अनुराग ट्रस्ट
डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : क्रिएटिव प्रिन्टर्स 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

रामलीला

इधर एक मुद्दत से रामलीला देखने नहीं गया। बन्दरों के भद्दे चेहरे लगाये, आधे टाँगों का पाजामा और काले रंग का ऊँचा कुरता पहने आदमियों को दौड़ाते, हू-हू करते देखकर अब हँसी आती है; मज़ा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक़ से गया; पर मुझे तो वहाँ की लीला और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अन्तर न दिखायी दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज-सामान अच्छे हैं। राक्षसों और बन्दरों के चेहरे पीतल के हैं, गदाएँ भी पीतल की हैं; कदाचित बनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों; लेकिन साज़-सामान के सिवा वहाँ भी वह हू-हू के सिवा कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती।

लेकिन एक ज़माना वह था, जब मुझे भी रामलीला में आनन्द आता था। आनन्द तो

बहुत हलका-सा शब्द है। वह आनन्द उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था; और जिस घर में लीला-पात्रों का रूप-रंग भरा जाता था, वह तो मेरे घर से बिलकुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा बैठता, और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन लेने भी नहीं जाता। एक कोठरी में राजकुमारी का शृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती; मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुँदकियाँ लगायी जाती थीं। सारा माथा, भौंहें, गाल, ठोड़ी, बुँदकियों से रच उठती थीं। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता, तो उस पर रामचन्द्र जी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था। वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर भी नहीं होता। एक बार जब होम-मेम्बर साहब ने व्यवस्थापक-सभा में मेरे एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक़्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब-तहसीलदारी में नामजद हुआ, तब भी ऐसी ही तरंगें मन में उठी थीं; पर इनमें और उस बाल-विह्वलता में बड़ा अन्तर है। तब ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद-नौका-लीला का दिन था। मैं दो-चार लड़कों के बहकाने में आकर गुल्ली-डण्डा खेलने लगा था। आज शृंगार देखने न गया। विमान भी निकला; पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिए उससे कहीं बढ़कर आत्मत्याग की ज़रूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता तो मैं कब का भाग खड़ा होता; लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होती है। ख़ैर, दाँव पूरा हुआ। अगर मैं चाहता, तो धाँधली करके दस-पाँच मिनट और पदा सकता था, इसकी

काफ़ी गुंजाइश थी, लेकिन अब इसका मौक़ा न था। मैं सीधे नाले की तरफ़ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा – मल्लाह किश्ती लिये आ रहा है। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आख़िर जब मैं भीड़ हटाता, प्राण-पण से आगे बढ़ता घाट पर पहुँचा, तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचन्द्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी! अपने पाठ की चिन्ता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिससे वह फेल न हो जायें। मुझसे उम्र ज़्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचन्द्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नक़ल में भी असल की कुछ-न-कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा ही तीखी रही है, वह मुझे क्यों उबारते? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ़ दौड़ता, पर सब-के-सब अपनी धुन में मस्त थे; मेरी चीख़-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तबसे बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेलीं; पर उस समय जितना दु:ख हुआ, उतना फिर कभी न हुआ।

मैंने निश्चय किया था अब रामचन्द्र से न कभी बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज़ ही दूँगा; लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर लौटे, मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।

2

रामलीला समाप्त हो गयी थी। राजगद्दी होने वाली थी; पर न जाने क्यों देर हो रही थी। शायद चन्दा कम वसूल हुआ था। रामचन्द्र की इन दिनों कोई बात भी न पूछता था। न घर ही जाने की छुट्टी मिलती थी, न भोजन का ही प्रबन्ध होता था। चौधरी साहब के यहाँ से एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाक़ी सारे दिन कोई पानी को

नहीं पूछता। लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचन्द्र ही थे। घर पर मुझे खाने की कोई चीज़ मिलती, वह लेकर रामचन्द्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनन्द मिलता था, उतना आप खा जाने में कभी न मिलता। कोई मिठाई या फल पाते ही मैं बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचन्द्र वहाँ न मिलते तो उन्हें चारों ओर तलाश करता, और जब तक वह चीज़ उन्हें न खिला लेता, मुझे चैन न आता था।

ख़ैर, राजगद्दी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया। उसकी ख़ूब सजावट की गयी। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचन्द्र की सवारी निकली, और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गयी। श्रद्धानुसार किसी ने रुपये दिये, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलिस के आदमी थे; इसलिए उन्होंने बिना कुछ दिये ही आरती उतारी। उस वक़्त मुझे जितनी लज्जा आयी, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास उस वक़्त संयोग से एक रुपया था। मेरे मामा जी दशहरे के पहले आये थे और मुझे एक रुपया दे गये थे। उस रुपये को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे ख़र्च नहीं कर सका। मैंने तुरन्त वह रुपया लाकर आरती की थाली में डाल दिया। पिता जी मेरी ओर कुपित-नेत्रों से देखकर रह गये। उन्होंने कहा तो नहीं; लेकिन मुँह ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रोब में बट्टा लग गया। रात के दस बजते-बजते यह परिक्रमा पूरी हुई। आरती की थाली रुपयों और पैसों से भरी हुई थी। ठीक तो नहीं कह सकता; मगर अब ऐसा अनुमान होता है कि चार-पाँच सौ रुपयों से कम न थे। चौधरी साहब इनसे कुछ ज़्यादा ही ख़र्च कर चुके थे। उन्हें इसकी बड़ी फ़िक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम दो सौ रुपये और वसूल हो जायें और इसकी सबसे अच्छी तरक़ीब उन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफ़िल में वसूली हो। जब लोग आकर बैठ जायें, और महफ़िल का रंग जम जायें, तो आबादीजान रसिकजनों की कलाइयाँ पकड़-पकड़कर ऐसे हाव-भाव दिखायें कि लोग

शरमाते-शरमाते भी कुछ-न-कुछ दे ही मरें। आबादीजान और चौधरी साहब में सलाह होने लगी। मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था। चौधरी साहब ने समझा होगा, यह लौण्डा क्या मतलब समझेगा। पर यहाँ ईश्वर की दया से अक्ल के पुतले थे। सारी दास्तान समझ में आती-जाती थी।

चौधरी – सुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज़्यादती है। हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबिका तो है नहीं। ईश्वर ने चाहा तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा। अब की चन्दा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इतना इसरार न करता।

आबादी. – आप मुझसे भी ज़मींदारी चालें चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुज़ूर की दाल न गलेगी। वाह! रुपये तो मैं वसूल करूँ, और मूँछों पर ताव आप दें। कमाई का अच्छा ढंग निकाला है। इस कमाई से तो वाक़ई आप थोड़े दिनों में राजा हो जायेंगे। उसके सामने ज़मींदारी झक मारेगी! बस, कल ही से एक चकला खोल दीजिये! खुदा की क़सम, माला माल हो जाइयेगा।

चौधरी – तुम दिल्लगी करती हो, और यहाँ क़ाफ़िया तंग हो रहा है।

आबादी. – तो आप भी तो मुझी से उस्तादी करते हैं। यहाँ आप-जैसे काँइयों को रोज़ उँगलियों पर नचाती हूँ।

चौधरी – आख़िर तुम्हारी मंशा क्या है?

आबादी. – जो कुछ वसूल करूँ, उसमें आधा मेरा, आधा आपका। लाइये, हाथ मारिये।

चौधरी – यही सही।

आबादी. – अच्छा, तो पहले मेरे सौ रुपये गिन दीजिये। पीछे से आप अलसेट करने लगेंगे।

चौधरी – वाह! वह भी लोगी और यह भी।

आबादी. – अच्छा! तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी? वाह री आपकी समझ! ख़ूब; क्यों न हो। दीवाना बकारे दरवेश हुशियार!

चौधरी – तो क्या तुमने दोहरी फ़ीस लेने की ठानी है?

आबादी. – अगर आपको सौ दफ़े ग़रज़ हो, तो। वरना मेरे सौ रुपये तो कहीं गये ही नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ?

चौधरी की एक न चली। आबादी के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीन और उसकी अदाएँ तो इस ग़ज़ब की थीं कि मेरी तबियत भी मस्त हुई जाती थी। आदमियों के पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गयी, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रुपये से कम तो शायद ही किसी ने दिये हों। पिता जी के सामने भी वह बैठी। मैं मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यक़ीन था कि पिता जी उसका हाथ झटक देंगे और शायद दुत्कार भी दें, किन्तु यह क्या हो रहा है! ईश्वर! मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं! पिता जी मूँछों में हँस रहे हैं। ऐसी मृदु-हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपका पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था; मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादी के कोमल हाथों से

अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ? आबादी तो उनके गले में बाँहें डाले देती है। अब पिता जी उसे ज़रूर पीटेंगे। चुड़ैल को ज़रा भी शर्म नहीं।

एक महाशय ने मुस्कराकर कहा – यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी, आबादीजान! और दरवाज़ा देखो।

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही, और बहुत ही उचित कही; लेकिन न जाने क्यों पिता जी ने उसकी ओर कुपित-नेत्रों से देखा, और मूँछों पर ताव दिया। मुँह से तो वह कुछ न बोले; पर उनकी मुख की आकृति चिल्लाकर सरोष शब्दों में कह रही थी – तू बनिया, मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार हैं। रुपये की हक़ीक़त ही क्या! तेरा जी चाहे, आज़मा ले। तुझसे दूनी रक़म न दे डालूँ, तो मुँह न दिखाऊँ! महान आश्चर्य! 'घोर अनर्थ! अरे, ज़मीन तू फट क्यों नहीं जाती? आकाश तू फट क्यों नहीं पड़ता? अरे मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती!' पिता जी जेब में हाथ डाल रहे हैं। वह कोई चीज़ निकाली, और सेठजी को दिखाकर आबादीजान को दे डाली। 'आह! यह तो अशर्फ़ी है।' चारों ओर तालियाँ बजने लगीं। सेठजी उल्लू बन गये। पिता जी ने मुँह की खाई, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता। मैंने केवल इतना देखा कि पिता जी ने एक अशर्फ़ी निकालकर आबादीजान को दी। उनकी आँखों में इस समय इतना गर्वयुक्त उल्लास था मानो उन्होंने हातिम की क़ब्र पर लात मारी हो। यही पिता जी हैं, जिन्होंने मुझे आरती में एक रुपया डालते देखकर मेरी ओर इस तरह से देखा था, मानो मुझे फाड़ ही खायेंगे। मेरे उस परमोचित व्यवहार से उनके रोब में फ़र्क़ आता था, और इस समय इस घृणित, कुत्सित और निन्दित व्यापार

पर गर्व और आनन्द से फूले न समाते थे।

आबादीजान ने एक मनोहर मुस्कान के साथ पिता जी को सलाम किया और आगे बढ़ी; मगर मुझसे वहाँ न बैठा गया। मेरा शर्म के मारे मस्तक झुका जाता था; अगर मेरी आँखों-देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी एतबार न होता। मैं बाहर जो कुछ देखता-सुनता था, उसकी रिपोर्ट अम्माँ से ज़रूर करता था। पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रखा। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दु:ख होगा।

रातभर गाना होता रहा। तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चलकर देखूँ; पर साहस न होता था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखाऊँगा? कहीं किसी ने पिता जी का ज़िक्र छेड़ दिया, तो मैं क्या करूँगा?

प्रात:काल रामचन्द्र की बिदाई होने वाली थी। मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा। डर रहा था कि कहीं रामचन्द्र चले न गये हों। पहुँचा, तो देखा – तवायफ़ों की सवारियाँ जाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हसरतनाक मुँह बनाये उन्हें घेरे खड़े हैं। मैंने उनकी ओर आँख तक न उठायी। सीधा रामचन्द्र के पास पहुँचा। लक्ष्मण और सीता बैठे रो रहे थे; और रामचन्द्र खड़े काँधे पर लुटिया-डोर डाले उन्हें

समझा रहे थे। मेरे सिवा वहाँ और कोई न था। मैंने कुण्ठित-स्वर से रामचन्द्र से पूछा – क्या तुम्हारी बिदाई हो गयी?

रामचन्द्र – हाँ, हो तो गयी। हमारी बिदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया – जाओ, चले जाते हैं।

'क्या रुपया और कपड़े नहीं मिले?'

'अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं – इस वक़्त बचत में रुपये नहीं हैं। फिर आकर ले जाना।'

'कुछ नहीं मिला?'

'एक पैसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था, कुछ रुपये मिल जायेंगे तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा! सो कुछ न मिला। राह-ख़र्च भी नहीं दिया। कहते हैं – कौन दूर है, पैदल चले जाओ!'

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को ख़ूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिए रुपये, सवारियाँ सब कुछ; पर बेचारे रामचन्द्र और उनके साथियों के लिए कुछ भी नहीं! जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रुपये न्योछावर किये थे, उनके पास क्या इनके लिए दो-दो, चार-चार आने पैसे भी नहीं। पिता जी ने भी तो आबादीजान को एक अशर्फ़ी दी थी। देखूँ इनके नाम पर क्या देते हैं! मैं दौड़ा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफ़तीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मुझे देखकर बोले – कहाँ घूम रहे हो? पढ़ने के वक़्त तुम्हें घूमने की सूझती है?

मैंने कहा – गया था चौपाल। रामचन्द्र विदा हो रहे थे। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।

'तो तुम्हें इसकी क्या फ़िक्र पड़ी है?'

'वह जायेंगे कैसे? पास राह-ख़र्च भी तो नहीं है!'

'क्या कुछ ख़र्च भी नहीं दिया? यह चौधरी साहब की बेइंसाफ़ी है।'

'आप अगर दो रुपये दे दें, तो मैं उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जायें।'

पिता जी ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा – जाओ, अपनी किताब देखो, मेरे पास रुपये नहीं हैं।

यह कहकर वह घोड़े पर सवार हो गये। उसी दिन से पिता जी पर से मेरी श्रद्धा उठ गयी। मैंने फिर कभी उनकी डाँट-डपट की परवाह नहीं की। मेरा दिल कहता – आपको मुझको उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। मुझे उनकी सूरत से चिढ़ हो गयी। वह जो कहते, मैं ठीक उसका उल्टा करता। यद्यपि इससे मेरी हानि हुई; लेकिन मेरा अन्त:करण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो आने पैसे पड़े हुए थे। मैंने पैसे उठा लिये और जाकर शरमाते-शरमाते रामचन्द्र को दे दिये। उन पैसों को देखकर रामचन्द्र को जितना हर्ष हुआ, वह मेरे लिए आशातीत था। टूट पड़े, मानो प्यासे को पानी मिल गया।

यही दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियाँ विदा हुईं! केवल मैं ही उनके साथ क़स्बे के बाहर तक पहुँचाने आया।

उन्हें विदा करके लौटा, तो मेरी आँखें सजल थीं; पर हृदय आनन्द से उमड़ा हुआ था।

अनुराग ट्रस्ट

Telegram Group

www.OnlineStudyPoints.com

OnlineStudyPoints_2 - Join Now

OnlineStudyPoint_2 - Join Now

(24 x 7) Students Online Chat - All india

अगर आप किसी भी एग्जाम की तैयारी कर रहे हैं तो इस ग्रुप को ज्वाइन कर लीजिए |

* Free e books (Important)

* Free Study Material (pdf)

* Free Jobs Alert (Daily Update)

* Speed - Quiz Test (Daily Updates)